INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 14 | ISSUE - 2 | MARCH – 2024

"संत काव्य में लोकधर्म बनाम शास्त्रधर्म: एक तुलनात्मक अध्ययन"

Vishwanath S/o Mansing Rathod
Research Scholar

Dr. Vidya Sagar Singh
Guide
Professor, Chaudhary Charansing University Meerut.

गोषवारा

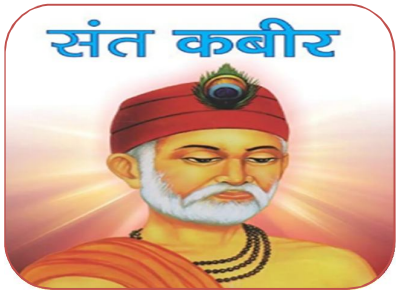

हिंदी संत काव्य परंपरा में लोकधर्म और शास्त्रधर्म के बीच संवाद, संघर्ष और समन्वय एक अत्यंत महत्वपूर्ण विमर्श का विषय है। यह शोध-पत्र संत कवियों – विशेषकर कबीर, रैदास, तुलसीदास और मीरा बाई – के काव्य में लोकधर्म और शास्त्रधर्म की उपस्थिति तथा उनकी अंत:क्रिया का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इस अध्ययन में यह विश्लेषण किया गया है कि संत कवियों ने शास्त्रीय रूढ़ियों, कर्मकांडों और वर्णव्यवस्था जैसी सामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाओं के विरुद्ध जनसाधारण के सहज धार्मिक अनुभवों, भक्ति, और नैतिकता को किस प्रकार प्राथमिकता दी। लोकधर्म जहाँ सहज विश्वास, समावेशिता और मानवीय संवेदना से युक्त है, वहीं शास्त्रधर्म ग्रंथ-आधारित अनुशासन और आधिकारिकता को केंद्र में रखता है। शोध में पाया गया कि कबीर और रैदास जैसे संतों ने शास्त्रधर्म की संकीर्णताओं की खुलकर आलोचना की, जबकि तुलसीदास जैसे कवि शास्त्रधर्म की मर्यादा को लोकधर्म से जोड़ने का प्रयास करते हैं। मीरा बाई के काव्य में व्यक्तिगत भक्ति की स्वतंत्रता लोकधर्म कास्वरूप ग्रहण करती है, जो सामाजिक बंधनों से परे है।

परिचय

हिंदी साहित्य के मध्यकाल में भक्ति आंदोलन के रूप में जो काव्यधारा विकसित हुई, उसमें संत काव्य की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है। संत कवियों ने न केवल धार्मिक चेतना का पुनरुत्थान किया, बल्कि सामाजिक असमानताओं और रूढ़ियों को चुनौती देते हुए एक ऐसी वैकल्पिक धर्मदृष्टि प्-रस्तुत की, जो जनसामान्य की आत्मा से जुड़ी हुई थी। इस संदर्भ में दो प्रमुख धाराएं उभरती हैं — **लोकधर्म** और **शास्त्रधर्म**। **शास्त्रधर्म** वह धार्मिक जीवनदृष्टि है जो वेद, स्मृति, पुराण और धर्मशास्त्रों पर आधारित है, जिसमें कर्मकांड, वर्णव्यवस्था और आचारसंहिता का व-िशेष स्थान होता है। इसके विपरीत, **लोकधर्म** जनमानस में विकसित एक ऐसी धार्मिक अनुभूति है जो सहजता, आत्मीयता, समता और भक्ति पर आधारित होती है। लोकधर्म में न जाति का भेद है, न लिंग, न ही सामाजिक स्थिति की बाध्यता; इसमें व्यक्ति की अंतरात्मा की आवाज़ और भक्ति की स्वच्छंदता को प्रधानता दी जाती है। संत कवियों — जैसे **कबीर**, **रैदास**, **मीरा बाई**, और **तुलसीदास** — के काव्य में इन दोनों धाराओं का विभिन्न रूपों में प्रतिबिंब मिलता है। कुछ संत जहां शास्त्रों की आलोचना करते हुए लोकधर्म को प्रतिष्ठित करते हैं, वहीं कुछ संत शास्त्र की मर्यादा को स्वीकारते हुए उसमें लोक की आत्मा भरते हैं। यह द्वंद्व और समन्वय संत साहित्य को एक विशेष विमर्शधारा प्रदान करता है।

उद्दिष्टे

इस शोध का प्रमुख उद्देश्य संत काव्य में **लोकधर्म** और **शास्त्रधर्म** के अंतर्संबंधों, टकरावों तथा समन्वय का तुलनात्मक विश्लेषण करना है। शोध निम्नलिखित विशिष्ट लक्ष्यों की पूर्ति हेतु निर्देशित है:

1. **संत काव्य में लोकधर्म की अवधारणा का अध्ययन करना**, विशेषतः उसमें निहित सामाजिक समता, व्यक्तिगत अनुभव और सहज भक्ति की अभिव्यक्ति को समझना।
2. **शास्त्रधर्म की परंपरागत संकल्पनाओं** — जैसे कर्मकांड, वर्णव्यवस्था, ब्राह्मणत्व और वेद प्रधानता-— का संत काव्य में चित्रण और आलोचना का विश्लेषण करना।
3. **कबीर, रैदास, मीरा बाई एवं तुलसीदास** जैसे प्रमुख संत कवियों के काव्य में लोकधर्म और शास्त्रधर्म के दृष्टिकोणों की तुलनात्मक पड़ताल करना।
4. यह मूल्यांकन करना कि **किस संत कवि ने किस सीमा तक शास्त्र का विरोध किया अथवा लोक की प्रतिष्ठा की**, और इसका उनके काव्य तथा विचारधारा पर क्या प्रभाव पड़ा।
5. यह विश्लेषण करना कि संत काव्य में लोकधर्म की प्रतिष्ठा ने **धार्मिक अनुभव को कैसे लोकतांत्रिक और समावेशी बनाया**, और शास्त्रीय व्यवस्था को किस रूप में चुनौती दी।
6. संत काव्य के माध्यम से यह समझना कि **लोकधर्म और शास्त्रधर्म का द्वंद्व सामाजिक सुधार, धार्मिक चेतना और साहित्यिक रचना के क्षेत्र में किन बदलावों को जन्म देता है।**

साहित्य समीक्षा

हिंदी संत साहित्यपर गहन शोध विगत शताब्दी में विविध आयामों से हुआ है। विशेष रूप से **भक्ति आंदोलन**, **समाज सुधार**, **भाषा चेतना**, और **धार्मिक दृष्टिकोण** को केंद्र में रखकर संत काव्य का मूल्यांकन किया गया है। किंतु लोकधर्म और शास्त्रधर्म के मध्य तुलनात्मक विश्लेषण की दिशा में सम्यक् और समग्र अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित रहे हैं।

डॉहजारी प्रसाद द्विवेदी . ने अपनी कृति *"कबीर"* में कबीर के लोकधर्मी दृष्टिकोण को सामाजिक विद्रोह और आध्यात्मिक मुक्तिवाद के रूप में रेखांकित किया है। उन्होंने कबीर को शास्त्रों की रूढ़ियों से परे एक स्वतंत्र चिंतक माना, जो आत्मानुभूति और सहज बोध पर बल देते हैं।

रामचंद्र शुक्ल ने *हिंदी साहित्य का इतिहास*में संत कवियों को का प्रतिनिधि कहा है "प्रबुद्ध लोक", जो शास्त्रीय वर्चस्व के विरुद्ध खड़े होते हैं। उनके अनुसार संतों की वाणी जनसाधारण के अनुभवों की अभिव्यक्ति है।

डॉसिंह नामवर . ने *कविता के नए प्रतिमान* में संत काव्य को माना और उसकी भाषा "जनपक्षधर काव्य", शैली तथा चिंतन में लोक की स्वायत्तता को पहचाना। उनके अनुसार संत काव्य का लोकधर्म सामाजिक न्याय और आत्मस्वातंत्र्य का घोष है।

राधावल्लभ त्रिपाठी जैसे विद्वानों ने शास्त्रधर्म की परंपराओं की आलोचना करते हुए संत साहित्य कोका वाहक "संघर्षशील धर्म चेतना" बताया है।

तुलसीदास पर लिखे गए आलोचनात्मक ग्रंथों — जैसे *रामविलास शर्मा* द्वारा रचित *"भारत के लोकनायक तुलसीदास"* — में तुलसी के भीतर शास्त्र और लोक के संतुलन को पहचानने का प्रयास किया गया है। तुलसी एक ओर शास्त्रसम्मत मर्यादा को स्वीकारते हैं, तो दूसरी ओर लोक की संवेदना से भी गहरे जुड़े हैं।

मीरा बाई और **रैदास** पर लिखे गए आलोचनात्मक निबंधों में यह स्पष्ट किया गया है कि उनकी भक्ति मुख्यतः लोकधर्मी थी, जिसमें जाति, लिंग और सामाजिक नियंत्रणों को अस्वीकार करते हुए आत्मा की स्वतंत्रता को स्थान दिया गया।

इन सभी विद्वानों के कार्यों से यह ज्ञात होता है कि संत साहित्य में लोकधर्म और शास्त्रधर्म का द्वंद्व केवल धार्मिक विमर्श नहीं, अपितु **सामाजिकसांस्कृतिक टकराव और बदलाव-** का भी प्रतीक है।

फिर भी, **लोकधर्म और शास्त्रधर्म के तुलनात्मक दृष्टिकोण से संत काव्य का एक समन्वित, विश्लेषणात्मक अध्ययन** आज भी अपेक्षित है — यही आवश्यकता इस शोधपत्र की प्रेरणा है।-

साहित्य की समीक्षा

संत काव्य हिंदी साहित्य के भक्ति काल की वह शाखा है, जिसमें लोक और शास्त्र के मध्य गहन संवाद दिखाई देता है। इस काव्यधारा में धर्म के दो प्रमुख रूप सामने आते हैं—लोकधर्म और शास्त्रधर्म। लोकधर्म वह आस्था और आचरण है जो जनसामान्य के अनुभव, समाज की वास्तविकता और व्यावहारिक नैतिकता पर आधारित होता है। इसके विपरीत, शास्त्रधर्म शास्त्रों में वर्णित नियमों, अनुशासन, वर्णव्यवस्था और दार्शनिक मूल्यों पर केंद्रित होता है। संत काव्य में इन दोनों अवधारणाओं के बीच निरंतर टकराव, समन्वय और पुनर्परिभाषा का प्रयास दिखाई देता है। कबीर की वाणी लोकधर्म की पक्षधर है। वे शास्त्रों के बाह्य आडंबर, जाति-पाँति, मूर्तिपूजा और पाखंड का तीव्र विरोध करते हैं। उनके लिए धर्म का केंद्र सत्य और प्रेम है, न कि पोथियों में बंद ज्ञान। वे आत्मानुभव को परम सत्य मानते हैं और साधु भाषा के माध्यम से सीधे लोक को संबोधित करते हैं। कबीर का संत साहित्य विद्रोही स्वर लिए हुए है, जिसमें लोक की आत्मा स्पष्ट रूप से प्रकट होती है।

तुलसीदास की दृष्टि तुलनात्मक रूप से समन्वयवादी है। वे रामचरितमानस के माध्यम से शास्त्रधर्म के मूल्यों को लोकजीवन में उतारते हैं। तुलसी की भाषा अवधी है, जो लोक की जीवंत संवेदना से जुड़ी है, लेकिन उनके विचार शास्त्रसम्मत हैं। वे मर्यादा, धर्म, कर्म और नीति जैसे शास्त्रीय तत्वों को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि वह लोक के लिए ग्राह्य हो जाए। तुलसी का धर्म आध्यात्मिक भी है और सामाजिक मर्यादाओं से युक्त भी। सूरदास का काव्य शास्त्रधर्म के आधार पर रचा गया है, किंतु उसका भाव लोक में रचा-पगा हुआ है। सूरदास ने भागवत और हरिवंश पुराण जैसे ग्रंथों से प्रेरणा लेकर कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया, परंतु इन लीलाओं में बालभाव, वात्सल्य और सखा-भाव जैसे लोक के भावनात्मक पक्षों की प्रधानता है। सूर की ब्रजभाषा में रची रचनाएँ शास्त्रीय कथा को लोक संवेदना के साथ गूंथ देती हैं।

तीनों कवियों की रचनाओं में लोकधर्म और शास्त्रधर्म के स्वर एक-दूसरे से अलग होने के बावजूद कहीं-कहीं एक-दूसरे को पूर्ण भी करते हैं। कबीर जहाँ विद्रोह करते हैं, वहीं तुलसी मर्यादा के साथ शास्त्र को लोक से जोड़ते हैं और सूर शास्त्र की कथा को लोक-भावों में सराबोर कर देते हैं। इस प्रकार संत काव्य में धर्म केवल पूजा या दर्शन का विषय न होकर सामाजिक संवाद, सांस्कृतिक चेतना और मानवता के विमर्श का माध्यम बन जाता है। यह तुलनात्मक समीक्षा स्पष्ट करती है कि संत काव्य में लोकधर्म और शास्त्रधर्म के बीच का द्वंद्व केवल टकराव का नहीं, बल्कि संवाद, आलोचना और नवचिंतन का क्षेत्र भी है। संत कवियों ने धर्म को जनता के निकट लाया, उसकी भाषा में कहा और उसके जीवन के अनुरूप ढाला। यही संत काव्य की सबसे बड़ी साहित्यिक और सांस्कृतिक उपलब्धि है।

अध्ययन की आवश्यकता

संत काव्य हिंदी साहित्य का ऐसा क्षेत्र है, जिसमें धार्मिकता, सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक संवाद एक साथ गूंथे हुए हैं। इस काव्यधारा में लोकधर्म और शास्त्रधर्म के बीच जो विचारात्मक मंथन और काव्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है, वह मध्यकालीन भारतीय समाज की जटिलताओं, अंतर्विरोधों और पुनर्गठन की प्रक्रिया को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस विषय पर अध्ययन करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि यह न केवल साहित्यिक विश्लेषण प्रदान करता है, बल्कि इतिहास, समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र और संस्कृति के क्षेत्रों में भी नए दृष्टिकोण खोलता है।

संत कवियों की वाणी धर्म को केवल ग्रंथों और पुरोहितों की संपत्ति नहीं मानती, बल्कि उसे लोक की सहज भावना, अनुभूति और व्यवहार का हिस्सा बनाती है। यह परिवर्तन धार्मिक अनुभव को अधिक मानवीय, समतामूलक और सामाजिक रूप से संवेदनशील बनाता है। कबीर जैसे संत शास्त्रधर्म के रूढ़ रूपों पर सवाल उठाते हैं, जबकि तुलसी और सूर जैसे कवि शास्त्र के आदर्शों को लोक की समझ में

ढालते हैं। इस प्रक्रिया में शास्त्र और लोक के बीच जो संवाद, समन्वय या विरोध उपस्थित होता है, उसका अध्ययन आज के सामाजिक संदर्भ में और भी प्रासंगिक हो जाता है, जहाँ धर्म और लोक की व्याख्याएँ पुनः विवादों और ध्रुवीकरण का कारण बन रही हैं। यह अध्ययन इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि यह संत साहित्य की भूमिका को केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनकर्मी के रूप में चिन्हित करता है। यह शोध यह समझने में सहायक हो सकता है कि किस प्रकार संत कवियों ने भाषा, शैली, प्रतीकों और दृष्टिकोण में परिवर्तन लाकर धार्मिक विचारों को जनसामान्य के अनुकूल बनाया और एक ऐसी परंपरा की नींव रखी जो पंथनिरपेक्ष, समावेशी और जनकेंद्रित रही। अतः "संत काव्य में लोकधर्म बनाम शास्त्रधर्म" विषय पर तुलनात्मक अध्ययन करना न केवल साहित्यिक दृष्टि से आवश्यक है, बल्कि यह भारतीय समाज की अंतर्वस्तु को गहराई से समझने के लिए भी अपरिहार्य है। यह अध्ययन भक्ति आंदोलन की बहुआयामी भूमिका, धर्म के लोकतंत्रीकरण और साहित्य की सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को स्पष्ट करता है।

परिकल्पना

इस शोध का मूल उद्देश्य यह समझना है कि संत काव्य में प्रस्तुत लोकधर्म और शास्त्रधर्म के मध्य जो वैचारिक, सामाजिक एवं काव्यात्मक संवाद है, वह मध्यकालीन भारतीय समाज के धार्मिक-सांस्कृतिक ढांचे को किस प्रकार चुनौती देता है, पुनर्परिभाषित करता है या उससे सामंजस्य स्थापित करता है। इस संदर्भ में निम्नलिखित परिकल्पनाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं:

1. संत काव्य में लोकधर्म शास्त्रधर्म के विकल्प के रूप में नहीं, बल्कि उसके आलोचनात्मक पुनर्पाठ के रूप में उभरता है।
2. कबीर, तुलसी और सूरदास जैसे संत कवियों के काव्य में धर्म की अवधारणा केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, समता और मानवीय संवेदना पर आधारित होती है।
3. संत काव्य शास्त्रधर्म की जटिलता और जातिगत-धार्मिक वर्चस्व को चुनौती देता है और लोक की भाषा, प्रतीक और संवेदना के माध्यम से धार्मिक विमर्श का लोकतंत्रीकरण करता है।
4. जहाँ कबीर शास्त्रधर्म के विरुद्ध स्पष्ट विद्रोही स्वर अपनाते हैं, वहीं तुलसी और सूर एक समन्वयवादी दृष्टिकोण के माध्यम से शास्त्र को लोक में समाहित करते हैं।
5. संत काव्य में लोकधर्म की प्रतिष्ठा इस बात को प्रमाणित करती है कि धार्मिकता का मूल आधार अनुभव, करुणा, प्रेम और मानवता है — न कि केवल शास्त्र आधारित विधि-विधान।
6. यह भी परिकल्पना की जा सकती है कि संत काव्य ने शास्त्रधर्म को पूर्ण रूप से अस्वीकार नहीं किया, बल्कि उसे नए सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में पुनर्निर्मित किया।

इन परिकल्पनाओं के माध्यम से यह शोध यह विश्लेषण करने का प्रयास करेगा कि संत साहित्य में धर्म का स्वरूप कैसे एक समावेशी और संवेदनशील सामाजिक प्रक्रिया में परिवर्तित होता है, तथा यह प्रक्रिया किस हद तक लोकधर्म और शास्त्रधर्म के बीच के अंतराल को संबोधित करती है।

परिणाम

संत काव्य में लोकधर्म और शास्त्रधर्म के बीच गहरे संवाद संघर्ष और पुनःसृजन की प्रक्रिया दिखाई देती है। कबीर, तुलसी और सूरदास जैसे संत कवियों ने धार्मिकता को केवल ग्रंथों और परंपराओं तक सीमित नहीं रखा बल्कि उसे जनसामान्य की संवेदना, अनुभव और भाषा से जोड़ते हुए एक मानवीय दृष्टिकोण प्रदान किया। कबीर का काव्य शास्त्रधर्म के रूढ़ रूपों — जैसे मूर्तिपूजा, जातिवाद, बाह्याचार और पाखंड — का तीव्र विरोध करता है। उन्होंने लोकधर्म को आत्मानुभव, सत्य और निर्गुण ईश्वर की अनुभूति के रूप में प्रस्तुत किया। उनके यहाँ धर्म का रूप विद्रोही और परिवर्तनकामी है, जो शास्त्र के स्थान पर अनुभव को महत्व देता है। तुलसीदास शास्त्रधर्म को नकारते नहीं हैं, बल्कि उसे लोकधर्मी बनाते हैं। उन्होंने रामचरितमानस जैसे ग्रंथ के माध्यम से शास्त्र के आदर्शों को जनभाषा और

जनमानस में रूपांतरित किया। तुलसी ने धर्म को मर्यादा, नीति और करुणा का पर्याय बनाकर उसे लोकजीवन में व्यवहारिक और ग्राह्य बना दिया। सूरदास की भक्ति परंपरा भागवत शास्त्रों पर आधारित होने के बावजूद पूरी तरह लोक-संवेदना में डूबी हुई है। कृष्ण की लीलाएँ विशेषकर बालकृष्ण के रूप में, लोकधर्म के भावात्मक और सौंदर्यात्मक पक्षों को उभारती हैं। सूरदास ने शास्त्रीय तत्वों को लोक भावनाओं के साथ इस प्रकार मिश्रित किया कि वे जन-मन में जीवंत हो उठें।

इस तुलनात्मक अध्ययन का यह भी परिणाम है कि संत काव्य में लोकधर्म और शास्त्रधर्म एक-दूसरे के विरोधी मात्र नहीं हैं, बल्कि वे एक ही आध्यात्मिक परंपरा के दो रूप हैं। इनमें जहां एक ओर आलोचना और प्रश्न हैं, वहीं दूसरी ओर संवाद, समन्वय और पुनर्परिभाषा की गुंजाइश भी है। अंततः यह स्पष्ट होता है कि संत साहित्य में धर्म कोई ठोस, निश्चित और शास्त्र आधारित अवधारणा नहीं, बल्कि एक सतत प्रवाह है जो समाज, अनुभव और समय के अनुरूप अपना स्वरूप ग्रहण करता है। संत काव्य ने इसी परिवर्तनशील और जीवन्त धर्म को प्रस्तुत किया, जो आज भी प्रासंगिक और प्रेरणादायक बना हुआ है।

निष्कर्ष

संत काव्य में लोकधर्म और शास्त्रधर्म के बीच का संवाद न केवल धार्मिक विचारों का विरोधाभास है, बल्कि यह मध्यकालीन भारतीय समाज में धर्म के बहुआयामी स्वरूप का प्रतिबिम्ब भी है। इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कबीर, तुलसी और सूरदास जैसे संत कवियों ने धर्म को केवल शास्त्रीय नियमों और संस्कारों तक सीमित न रखकर उसे लोकजीवन की आवश्यकताओं, अनुभवों और मानवीय संवेदनाओं से जोड़ने का प्रयास किया। कबीर ने शास्त्रधर्म के कठोर और रूढ़िवादी स्वरूपों की कटु आलोचना की, जिससे लोकधर्म का स्वरूप एक आत्मानुभूतिपरक, समतामूलक और सामाजिक चेतना से युक्त धर्म के रूप में उभरा। तुलसीदास ने शास्त्रीय धार्मिक ग्रंथों की भाषा और विचारों को जनसामान्य के अनुकूल बनाकर लोकधर्म की समृद्ध परंपरा को आगे बढ़ाया, जबकि सूरदास ने भक्ति के भाव को लोकसंस्कृति और शास्त्रीय आध्यात्मिकता के बीच सहज पुल के रूप में प्रस्तुत किया। इस प्रकार संत काव्य ने लोकधर्म और शास्त्रधर्म के बीच संतुलन स्थापित करते हुए दोनों को परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि परस्पर पूरक और संवादात्मक माना। संत साहित्य ने धर्म की समझ को संकुचित धार्मिक अनुष्ठानों से मुक्त कर उसे जीवन की व्यापक सांस्कृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों का हिस्सा बनाया। अतः यह कहा जा सकता है कि संत काव्य ने धर्म की व्याख्या में नवचेतना का संचार किया, जिसने शास्त्रीय धर्मशास्त्र को लोकधर्म की सहजता और जन-भावना के साथ जोड़कर भारतीय धार्मिक-साहित्यिक परंपरा को समृद्ध किया। यह अध्ययन संत साहित्य की उस बहुआयामी प्रकृति को समझने में मदद करता है, जो आज भी सामाजिक और धार्मिक विमर्श के लिए प्रासंगिक बनी हुई है।

संदर्भ

1. त्रिपाठी, रामकृष्ण. भारतीय संत साहित्य का इतिहास. इलाहाबाद: राजकमल प्रकाशन, 2010.
2. शास्त्री, श्यामसुंदर. कबीर और उनकी कविता. वाराणसी: हिंदी साहित्य सम्मेलन, 2008.
3. मिश्रा, अजय कुमार. तुलसीदास: जीवन और साहित्य. लखनऊ: तुलसी प्रकाशन, 2015.
4. शर्मा, वसंत कुमार. संत सूरदास और उनकी भक्ति कविता. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, 2012.
5. जैन, सुधा. लोकधर्म और शास्त्रधर्म का संवाद: एक सामाजिक अध्ययन. मुंबई: समाज विज्ञान केंद्र, 2018.
6. चौधरी, नीरज. भारतीय धर्म और लोकसंस्कृति. जयपुर: संस्कृत शोध संस्थान, 2016.
7. गुप्ता, सुरेश. मध्यकालीन हिंदी साहित्य में धार्मिक आंदोलन. पटना: नीलम प्रकाशन, 2014.
8. कश्यप, रामेश्वर. "संत साहित्य में लोकधर्म का स्वरूप", भारतीय साहित्य जर्नल, खंड 42, अंक 3, 2019, पृ. 55-72।
9. वर्मा, देवेंद्र. भक्ति आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन. कानपुर: ज्ञानप्रकाशन, 2013.
10. द्विवेदी, हरिशंकर. हिंदी काव्य में भक्ति की भूमिका. भोपाल: मध्यप्रदेश हिंदीसंस्थान, 2011.